ज्ञान–विज्ञान के अमूल्य स्रोत : भारतीय पुस्तकालय

डॉ. दीपक डोभाल
रूड़की

प्राचीन एवं पुरातन काल से ही भारतीय–सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास गौरवशाली रहा है। ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में हमारा देश पुरातन काल से ही संपूर्ण विश्व का गुरू रहा है। प्रत्येक युग में भारतवर्ष ने अन्य देशों के लोगों को अपनी विलक्षण शक्ति द्वारा प्रभावित किया है। प्राचीन काल से ही देश–विदेश के अनेक विद्वान भारत में आकर भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं साहित्यों का अध्ययन करने के लिए यहां पहुंचते रहे हैं। वैदिक काल, बौद्ध काल एवं मुगल या मध्य काल से ही यहां पर अनेकों ख्याति प्राप्त पुस्तकालय रहे हैं। इन पुस्तकालयों को क्रमशः ग्रंथालय, ग्रंथागार पोथी–खाना, किताब घर, कुतुबखाना तथा लाइब्रेरी आदि शब्दों से पुकारा जाता रहा है। प्राकृत एवं बौद्ध साहित्य में पुस्तकालय के लिए "सरस्वती भंडार" शब्द का बोध होता रहा है। पाश्चात्य देशों में पुस्तकालय के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग होता आया है। पुस्तकालय के लिए अंग्रेजी में 'LIBRARY' शब्द को प्रयुक्त किया जाता है। यह शब्द क्रमशः लैटिन के Libraia शब्द तथा रोमन शब्द Liber से बना है। जर्मन में Library के लिए Bibliotheck, स्पेनीश में Bibliotheca, फ्रैंच में Bibliotheque तथा बेल्जियम, फ्रांस, इटली, नार्वे, डेनमार्क आदि में Bibliothek शब्द का प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार भारतीय भाषाओं में पुस्तकालय के लिए तेलुगु भाषा में ग्रंथालयम्, तमिल में नुल्नियम, मलयालम में ग्रंथालयम् तथा उर्दू में दारूल मुतालया आदि शब्दों से अभिहित किया जाता है। 'पुस्तक' शब्द के लिए भी भारतीय भाषाओं में पोथी, बही व किताब शब्द प्रयुक्त होता है। पंजाबी भाषा में पुस्तक के लिए किताब, उर्दू में किताब, सिंधी भाषा में किताब, गुजराती में चोपड़ी, असमिया में पुठि या किताब, उड़िया में बही, तेलुगु में पुस्तकम्, तमिल में नूल, कन्नड़ में होन्तगे और बंगला में वई शब्द से संबोधन किया जाता है।

प्राचीन काल में जब कागज तकनीकी की जानकारी नहीं थी तो तब भोजपत्र, ताड़पत्र, ताम्रपत्र, केतकी पत्र, मार्तण्डपत्र तथा वटपत्रों पर लिखकर उन्हें पुस्तक का रूप दिया जाता था। इन पत्रों में वैदिक एवं धार्मिक ज्ञान–विज्ञान की बातें लिखकर पुस्तकों का सृजन किया जाता था। ये पुस्तकें श्रेष्ठ–एवं महत्वपूर्ण होती थी।

पद्मपुराण (उत्तरखंड) में लिखा है कि "धर्मशास्त्र एवं पुराण शास्त्रों को लिखकर यदि ब्राहमण को दान किया जाए तो दाता देवत्व को प्राप्त होता है"। इसी प्रकार गरूड़ पुराण के 125 वें अध्याय में लिखा है कि "वेदार्थ, यज्ञशास्त्र, धर्मशास्त्र, पुराण एवं इतिहास आदि पुस्तकें लिखकर जो व्यक्ति ब्राह्मणों को दान करते हैं उनका जीवन सुखमय हो जाता है। भागवतादि, वैष्णव ग्रंथों को दान करने से विष्णुपद में भक्ति और अंत में स्वर्गलाभ होता है।

पुस्तकों की महिमा अनंत है। पुस्तक के प्रत्येक अक्षर में भिन्न–भिन्न देवताओं का वास होता है। सतयुग में शंभु, द्वापर में प्रजापति, त्रेता में सूर्य और कलिकाल में स्वयं हरि का वास होता है। पुस्तकों का विशेष आदर भारतवर्ष में प्राचीन–पुरातन काल से ही होता चला आया है। माघ मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी के दिन देवी सरस्वती की पूजा ज्ञान–विज्ञान की देवी के रूप में बड़े आदर एवं आस्था के साथ भारत में धूम–धाम से की जाती है। यहां पर आस्था एवं पूजन इस बात का द्योतक है कि भारत में राजा–रंक, नर–नारी, बाल–युवा एवं वृद्ध सभी ज्ञान–विज्ञान से परिपूर्ण इन पुस्तकों का सम्मान प्रारंभ से करते आए हैं। आज लेखक पुस्तकों को लिखता है और प्रकाशक उसे प्रकाशित करता है। इस प्रकार प्रकाशित पुस्तक सहज एवं सरल रूप में जनसाधारण के उपयोग हेतु उपलब्ध हो जाती हैं। यही पुस्तकें समाज में अच्छे विचारों, संदेशों एवं सूचनाओं के प्रेषण का माध्यम बन जाती हैं। जिससे जनसाधारण को मनोरजंन के साथ–साथ ज्ञानार्जन की

प्रेरणा भी मिलती है। ये पुस्तकें ही संकीर्णता–जातीयता, प्रांतीयता एवं राष्ट्रीयता से परे होती हैं। पुस्तकों का महत्व पूरे भू–मंडल में व्याप्त होता है। उन्हें कहीं भी अपनाया जा सकता है। इन पुस्तकों को जो समाज या व्यक्ति जितना अपनाता है, वह उतना ही सुसंस्कृत–समृद्ध एवं सहज बन जाता है।

पुस्तकें ही हमें आत्मज्ञान का अनुभव कराती हैं। इन्हीं पुस्तकों के द्वारा मेधा शक्ति संपन्न हमारे पूर्वज या विद्वान हमें प्रेरणा के पथ की ओर अग्रसर कराते आए हैं। आज हमारे सम्मुख महाकवि कालिदास, तुलसीदास, सूरदास, बाल्मिकी, वेदव्यास, अरविन्द, टैगोर जैसे विद्वान महापुरूष इस संसार से देह त्याग करके चले गए हैं। किन्तु उनकी आत्माएं आज भी हमारे सम्मुख पुस्तकों या ग्रंथों के रूप में बोल रही हैं। इसी प्रकार कौरव–पांडव भी इस पृथ्वी से चले गए हैं लेकिन कृष्ण के अमृत तुल्य संदेश आज हमारे धार्मिक ग्रंथ 'गीता' के माध्यम से जन–मानस को आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण कर रहे हैं। देश के सुप्रसिद्ध महापुरूष ईसा, बुद्ध, गांधी, सुभाष आदि इस धरा से परलोक गमन कर गए हैं लेकिन उनके ओजस्वी विचार एवं संदेश आज भी प्रत्येक नागरिक के हृदय पटल पर पुस्तकों के अध्ययन मात्र से अंकित हो रहे हैं। अतः पुस्तकें ही धार्मिक सहिष्णुता एवं विश्व बंधुत्व की सशक्त माध्यम बनती है। यही पुस्तकें निरक्षर को साक्षर एवं साक्षर को विद्वान बना देती हैं। शास्वतः साहित्यों के अध्ययन एवं अधिकाधिक प्रचार–प्रसार होने से मानव जीवन सुखी, एवं समृद्ध बनता है।

सुकरात ने कहा था कि "जिस घर में अच्छी पुस्तकें नहीं है वह घर वास्तव में घर कहलाने योग्य नहीं है, वह तो जीवित मुर्दों का कब्रिस्तान है।" जहां पर अधिकाधिक पुस्तकों का संग्रह होता है, उसे पुस्तकालय कहा जाता है। कार्लाइन का कथन है कि "उत्तम पुस्तकों का संग्रह करना ही वर्तमान युग का सच्चा विश्वविद्यालय है। पुस्तकें ही घर की रोशनी, समाज की ज्योति एवं कुल की आभा होती हैं"।

पुस्तकों का आदर एवं सम्मान भारत देश में प्राचीन समय से ही होता चला आया है। प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन से यह विदित होता है कि पुरोहित, आचार्य ऋषि–मुनि ही आदि ग्रंथों के प्रणेता एवं संग्रहकर्ता थे। इन पुस्तकों की विशेष सुरक्षा का ध्यान रखा करते थे। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में ऐसा भी उल्लेख हुआ है कि एक–एक मुनि के दस–दस हजार शिष्य रहते थे। ये उन शिष्यों की भोजन, आवास एवं पठन–पाठन की व्यवस्था वहां स्थित आश्रमों या गुरूकुलों में ही संपन्न कराया करते थें। प्रारम्भ में लिपि का ज्ञान न होने से मौखिक तथा काव्य–प्रधान साहित्य के माध्यम से ऋषि–मुनि वैदिक मंत्रों एवं स्तुतियों का वाचन करते थे और थोड़े ही समय में वह ज्ञान हजारों शिष्यों के मस्तिष्क पटल पर अंकित हो जाता था। फिर यही ज्ञान गुरू से शिष्य तथा पिता से पुत्र तक वंश परम्परानुसार चलता रहता था। अतः प्राचीन काल में ऋषि–मुनि ही चलते–फिरते पुस्तकालय होते थे। धीरे–धीरे जब लिपि का ज्ञान मुनियों को होने लगा तो उन्होंने आदि वेद–मंत्रों को लिपिबद्ध एवं संग्रह करने का कार्य किया। सर्वप्रथम कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने अनेक वेद–मंत्रों को संग्रहित करके वेद–विभाग की आधारशिला रखी थी। इस प्रकार महाभारत काल से ही वेद–मंत्रों को लिपिबद्ध करने का प्रमाण मिलता है। इस प्रकार भारतवर्ष में बौद्ध एवं जैन धर्म का अत्यधिक प्रभाव बढ़ने से भी वेद आदि ग्रंथों को लिपिबद्ध करने का कार्य एवं प्रचार–प्रसार आरंभ हुआ। बौद्ध मतावलम्बियों के अनुसार भी ग्रंथ संग्रह करना भी पुण्य कार्य माना जाने लगा। इसी क्रम में अनेकों बौद्ध एवं जैन मठों में सभी संप्रदायों के हजारों ग्रंथों को संग्रहीत किया गया।

सातवीं सदी में जब चीनी यात्री ह्वेनसांग ने तत्कालीन नालंदा विश्वविद्यालय के ग्रंथागार से हजारों–ग्रंथों का अवलोकन किया और स्वदेश लौटते समय वह बाइस घोड़ों में महायान मतावलिम्बियों के 124 सूक्त एवं 520 खंडों में विभक्त विभिन्न ग्रंथों को संग्रहीत करके अपने साथ ले

गया था। आज भी चीन तथा जापान के अनेक पुस्तकालयों में भारतीय प्राचीन ग्रंथ–संग्रह किए हुए हैं।

प्राचीन काल में भारत के सुविख्यात पुस्तकालयों में नालंदा विश्वविद्यालय, तक्षशिला, वल्लभी, एवं विक्रमशिला विश्वविद्यालय के समृद्ध पुस्तकालय उल्लेखनीय रहे हैं। इन पुस्तकालयों में ज्योतिष, कृषि, पशुपालन, धनुर्विद्या, तर्क–शास्त्र, एंव चित्रकला संबंधी अनेकों दुलर्भ पुस्तकें उपलब्ध थी। इन्हीं पुस्तकालयों में देश–विदेशों के अनेकों विद्वान ज्ञानार्जन हेतु आते रहते थे।

तक्षशिला प्राचीन भारत का सबसे बड़ा शिक्षा का केन्द्र था। इस शिक्षण केन्द्र को राम के छोटे भाई भरत के कनिष्ठ पुत्र 'तक्ष' ने बसाया था। यहां पर देश–विदेशों से अनेक विद्यार्थी विद्याध्ययन करने के लिए पहुंचते थे। यहां पर वेद, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र एवं आयुर्वेद की शिक्षा दी जाती थी। यहां स्थित पुस्तकालय में व्याकरण, धनुर्विद्या, मंत्र विद्या, शल्य विद्या एवं तीन वेदों तथा 18 शिल्प विधाओं के ग्रंथ थे। इन ग्रंथों का अध्ययन करने के पश्चात् छात्रगण अपनी शिल्पकलाओं एवं व्यवसायों में संलग्न हो जाते थे। इसी प्रकार नालंदा विश्वविद्यालय भी प्राचीन भारत में प्रमुख शिक्षा केन्द्र के रूप में पूरे विश्व में विख्यात था।

नालंदा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय को ''धर्मगंज'' नाम से जाना जाता था। यहां पर अनेक विद्यार्थी एवं भिक्षु आकर अध्ययन करते थे। यहां पर स्थित पुस्तकालय भवन तीन मंजिला था। ये तीनों भवन क्रमशः रत्नोदधि, रत्नसागर, एवं रत्नरंजक नाम से जाने जाते थे। इस विशाल पुस्तकालय में बौद्ध साहित्य, धर्म एवं दर्शन के अतिरिक्त वेद, गणित ज्योतिषि व्याकरण, तंत्र–मंत्र की पुस्तकें रहती थी। इसी विश्वविद्यालय में दस हजार विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। यहां पर चीन, तिब्बत, कोरिया, मंगोलिया एवं मध्य एशिया आदि दूर–दराज के देशों के विद्यार्थी विद्याध्ययन करने आते थे।

यहीं पर चीनी यात्री इत्सिंग ने दस वर्षों तक (675–685 ई.) रूक कर करीब चार सौ ग्रंथों का संग्रह किया था, जिसमें 5 लाख पद थे। चीनी यात्री फाह्यिान ने लिखा है कि ''नालंदा एक विशाल शिक्षा का केन्द्र था। इस पुस्तकालय से हजारों छात्र अनेक प्रतिलिपियां तैयार करते थे। फाह्यिान ने भी वापस लौटते समय इसी पुस्तकालय से विभिन्न विषयों से संबंधित 675 पुस्तकों की नकल कराकर 520 बंडलों को बनाकर हस्तलिखित ग्रंथों को अपने साथ ले गया था। सभी दृष्टि से श्रेष्ठ यह पुस्तकालय देश–विदेश के हजारों विद्यार्थियों के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु था। किन्तु प्रारंभ से ही भारतीय वैभव एवं समृद्धि पर विध्वंशकारियों की कुदृष्टि पड़ती रही और 1205 ई. में बाह्य आक्रमणकारी बख्तियार खिलजी ने धावा बोलकर इस पुस्तकालय में रखे धार्मिक एवं अन्य ग्रंथों के विशाल भंडार को जलाकर राख कर दिया था। कहा जाता है कि यह विशाल एवं समृद्ध पुस्तकालय छः माह तक जलता रहा। यहां पर रखी दुर्लभ पुस्तकों का अस्तित्व हमेशा के लिए समाप्त हो चुका था।

राहुल सांस्कृत्यायन के अनुसार इस विश्वविख्यात विश्वविद्यालय में विश्व प्रसिद्व विद्वान रहते थे। इन्हीं विद्वानों में सबसे बड़े विद्वान दीपांकर श्रीज्ञान थे। जो वहां पर ''अतिश'' के नाम से जाने जाते थे। उनकी विद्वता से प्रभावित होकर तिब्बत के राजा ने उन्हें आमंत्रण भेजकर अपने यहां बुलाया और उन्हें भारत देश वापस लौटते समय ससम्मान 200 हस्तलिखित ग्रंथों की प्रतियां भेंट की थी। वे ग्रंथ भी इस विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की शोभा बढ़ाते थे। इसके अतिरिक्त मध्य भारत में स्थित मठों एवं विश्वविद्यालयों में विभिन्न विषयों की पुस्तकें जिसमें औषधि, शल्य चिकित्सा, जादू–टोना, सर्पविद्या एवं अनेक धार्मिक ग्रंथ उपलब्ध रहते थे। लेकिन वाह्य लुटेरों एवं आक्रमणकारियों ने इन विशाल, समृद्ध एवं महिमामंडित पुस्तकालयों को बुरी तरह नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, धीरे–धीरे करके मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भारत पर अधिकार करके अपना शासन आरंभ किया। इनमें मुगल शासकों ने 15वीं सदी में भारत पर शासन आरंभ करते ही सुंदर

एवं विशाल भवनों एवं पुस्तकालयों का निर्माण करवाया, इन पुस्तकों के संचालन के लिए अनेक विद्वान एवं अनुभवी व्यक्तियों को नियुक्त किया। इन पुस्तकालयों में हस्तलिखित एवं मुद्रित पुस्तकों को रखा गया था। जिसमें ज्योतिषि, काव्य, सूफीमत, कानून, आयुर्वेद, औषधि, ज्यामिति, दर्शन एवं संगीत विद्याओं से संबंधित पुस्तकें रहती थी। इन पुस्तकों को बंद पेटियों एवं अलमारियों में सुरक्षित तरीके से रखा जाता था। समय–समय पर इन पुस्तकों की धूल, कीड़ें–मकोड़ों से सुरक्षा होती रहती थी। पुस्तकालयों के संचालन के लिए पुस्तकालयध्यक्ष, जिल्दसाज, नकलनवीश एवं कातिब आदि पदाधिकारी हुआ करते थे। इन पुस्तकालयों में हिन्दी, संस्कृत, अरबी, उर्दू एवं फारसी भाषा के अनुवादक एवं विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया जाता था। ये विद्वान सहजता से विभिन्न भाषाओं की पुस्तकों का अनुवाद अरबी एवं फारसी भाषा में किया करते थे। इनमें मुगल शासकों में बाबर एवं हुमायूं को पुस्तकों से बड़ा लगाव था। उनके यहां उत्तमकोटि के पुस्तकालय थे।

प्रसिद्व इतिहासकार स्मिथ के अनुसार ''अकबर'' ने अपने पूर्वजों का अनुकरण करते हुए स्वयं भी अनेकों ग्रंथों का अध्ययन किया। अकबर को हस्तलिखित एवं पांडुलिपियों को संग्रह करने का बड़ा शौक था। अकबर ने हिन्दुओं के धार्मिक ग्रंथ रामायण एवं महाभारत आदि का (1581–1582 ई.) में फारसी भाषा में अनुवाद करवाया था।

आइने अकबरी ग्रंथ के अनुसार अकबर का पुस्तकालय सात खंडों में विभक्त था। जिसमें गद्य–पद्य हिन्दी, पाली, ग्रीक एवं कश्मीरी आदि ग्रंथों का संग्रह था। मुगलकाल में मुगल शासकों ने अपने दरबार में अनेकों धुरंधर विद्वानों को आश्रय प्रदान किया। जिसमें प्रसिद्व कवि एवं विद्वान अब्दुल रहीम खानखाना, अबुल फजल, बंदायूनी बख्शी निजामुद्दीन, मुल्लाह मुबारक आदि थे, जो कि विभिन्न विषयों के जानकार एवं अनुवादक थे। इसी प्रकार शाही पुस्तकालयों के अतिरिक्त राजा–रानी, दरबारी कवियों एवं विद्वानों के निजी पुस्तकालय हुआ करते थे। जहां बैठकर वे विभिन्न विषयों का ज्ञानार्जन किया करते थे। मुगलों के पश्चात् भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना हुई, अंग्रेजों ने अपने धर्म प्रचार–प्रसार एवं अंग्रेजी शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने भारत में मुंबई, कलकत्ता एवं मद्रास (चेन्नई) आदि महानगरों में बड़े पुस्तकालय खोलें। जिसमें रोमन लिपि की अधिक पुस्तकें थी। अतः इन पुस्तकों का उपयोग केवल समाज के उच्च वर्ग के लोग ही किया करते थे। यह पुस्कालय जन साधारण के उपयोग के लिए नहीं थे। लेकिन मुंबई की प्रांतीय सरकार ने वर्ष 1804 ई. में 'रॉयल एशियाटिक सोसायटी' के सहयोग से एक पुस्तकालय खोला। जहां पर अनेक संस्कृत एवं साहित्यिक पुस्तकों का अनुवाद कराया गया। तत्पश्चात् कलकत्ता में वर्ष 1835 ई. में एक 'सार्वजनिक पुस्तकालय' खोला गया। प्रारंभ में इस पुस्तकालय का उपयोग केवल केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों तक ही सिमित था। लेकिन 1903 में इसे सार्वजनिक पुस्तकालय से बदलकर ''इम्पीरियल लाइब्रेरी'' के नाम से जाना जाने लगा। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् यही ''इंपोरियल लाइब्रेरी'' ''नेशनल लाइब्रेरी'' के नाम से विख्यात हो गई। इस 'राष्ट्रीय पुस्तकालय' को कलकत्ता में स्थापित करने का श्रेय चक्रवर्ती रामगोपालाचारी, पं. जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद को जाता है। इस पुस्तकालय के प्रथम पुस्तकालयध्यक्ष वी.एस. केशवन नियुक्त किए गए।

अतः पुस्तकालयों की उपयोगिता एवं महत्व को ध्यान में रखते हुए धीरे–धीरे देश के समस्त विश्वविद्यालयों में पुस्तकालयों की स्थापना की जाने लगी। जिसमें कला, साहित्य, विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा संबंधी पुस्तकें छात्रों एवं पाठकों के उपयोग हेतु उपलब्ध करायी जाने लगी। आज देश की प्रत्येक शिक्षण संस्थाओं कालेजों, महाविद्यालयों, नगर–पालिकाओं, शहरों तथा कस्बों के अतिरिक्त दूर–दराज के गांव में पुस्तकालयों की स्थापना भारत सरकार या राज्य सरकारों के माध्यम से करायी जा रही है। जिसमें शहर से लेकर गांव में रहने वाला व्यक्ति भी आसानी से ज्ञानार्जन कर रहा है। पुस्तकों के अध्ययन करने से देश का प्रत्येक नागरिक उच्च शिक्षा एवं संस्कारवान शिक्षा प्राप्त करके सर्वांगीण विकास की ओर अग्रसर हो रहा है। अब तो देश का प्रत्येक नागरिक अत्याधुनिक एवं कंप्यूटरीकृत पुस्तकालयों के माध्यम से घर पर ही बैठे–बैठे देश–विदेश की

सूचनाओं एवं जानकारियों को आसानी से प्राप्त करने में सफल हो रहा है। यही आधुनिक तकनीक से युक्त पुस्तकालयों की देन है।

संदर्भ

1. पुस्तक – पुस्तकालय संगठन एवं प्रशासन पृष्ठ–35
   प्रकाशक बिहार विद्यापीठ संस्थान पटना (वर्ष 1984)।
2. पद्मपुराण (उत्तरखंड) से ।
3. गरूड़ पुराण (अध्याय–125) से।
4. राहुल सांस्कृतयायन – मेरी तिब्बत यात्रा से।
5. भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विकास – लेखक वी.एन. लूनिया (प्रकाशन वर्ष–2007 से)।